प्रकरण चौदह

एकाकी संघर्ष

मैं पीछे बैठा करता और बैठकों में उनकी बातों को चुपचाप सुनता रहता। वे निर्विशेषवाद की निरर्थक बातें करते रहते और मैं चुप रहता। तब एक दिन उन्होंने पूछा कि क्या मैं कुछ कहना चाहूँगा और मैं कृष्णभावनामृत के विषय में बोला। मैंने चुनौती दी कि वे शंकराचार्य के हवाले से मनगढंत दर्शन और व्यर्थ की बातें बता रहे थे। उन्होंने इस बात का इनकार किया अपने बचाव की कोशिश की और कहा कि वे नहीं बता रहे थे, शंकराचार्य बता रहे थे। मैंने कहा, "आप शंकराचार्य का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। बात एक ही है।" तब वे मुझसे बोले "स्वामीजी, मैं आपको बहुत चाहता हूँ, किन्तु आप यहाँ भाषण नहीं दे सकते।" परन्तु यद्यपि हमारे दर्शनों में अन्तर था और वे मुझे बोलने देने के लिए तैयार नहीं थे, तो भी वे मेरे प्रति कृपालु थे और मैं भी उनके प्रति मैत्रीपूर्ण था।

—श्रील प्रभुपाद के वार्तालाप से

प्रभुपाद न्यूयार्क महानगर में किसी को नहीं जानते थे : किन्तु डॉ. राममूर्ति मिश्र से उनका सम्पर्क था। उन्होंने बटलर से डॉ. मिश्र को एक पत्र लिखा था, जिसके साथ परमानंद मेहरा से बम्बई में प्राप्त परिचय-पत्र भी संलग्न कर दिया था। उन्होंने डॉ. मिश्र को फोन भी कर दिया था और डॉ. मिश्र ने न्यूयार्क में उनका स्वागत करते हुए अपने साथ रहने का आमंत्रण दिया था।

फिलाडेल्फिया से पोर्ट अथारिटी बस टर्मिनल पहुँचने पर डॉ. मिश्र का एक विद्यार्थी उन्हें मिला और सीधे शहर के भीतर हो रहे एक भारतीय उत्सव में ले गया। वहाँ प्रभुपाद की भेंट डॉ. मिश्र तथा रवि शंकर और उनके भाई, नर्तक उदय शंकर से हुई। तब प्रभुपाद

डॉ. मिश्र के साथ हडसन नदी के तट पर स्थित उनके घर, ३३ रिवरसाइड ड्राइव गये। यह घर चौदहवीं मंजिल पर था; उसमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ थीं जो नदी की ओर खुलती थीं। डॉ. मिश्र ने प्रभुपाद को एक अलग कमरा दे दिया।

डॉ. मिश्र नाटकीय और आडम्बर-प्रिय व्यक्ति थे, आँखें नचाकर और हाथ झटककर बातें करना उनका स्वभाव था। वे सदैव 'प्रिय' और 'सुन्दर' जैसे शब्दों का प्रयोग करते थे। गुरु कैसा होना चाहिए, उसकी एक कलापूर्ण परिष्कृत छवि प्रस्तुत करने वाले डॉ. मिश्र को कुछ न्यूयार्क निवासी 'शहरी स्वामी' कहते थे। अमेरिका आने के पहले वे संस्कृत के अध्येता, गुरु और डॉक्टर रह चुके थे। वे कई पुस्तकें लिख चुके थे—जैसे *दि टेक्स्टबुक आफ योग साइकालोजी* एवं अद्वैत दार्शनिक शंकर की शिक्षाओं पर आधारित *सेल्फ एनेलिसिस एंड सेल्फ नालेज*। संयुक्त राज्य में आने पर उन्होंने अपना डॉक्टरी व्यवसाय जारी रखा, किन्तु जब कुछ लोग उनके शिष्य होने लगे, तब उन्होंने डॉक्टरी का व्यवसाय बन्द कर दिया। यद्यपि वे संन्यासी थे, किन्तु वे पारंपरिक गेरुई धोती और कुर्ता नहीं धारण करते थे, अपितु सिली हुई नेहरू जैकेट और सफेद ढीला पायजामा पहनते थे। उनका वर्ण श्याम था, जबकि प्रभुपाद का रंग सुनहरा था और बाल घने तथा काले थे। चौवालीस वर्ष की अवस्था होने पर भी डॉ. मिश्र, प्रभुपाद के लड़के जैसे युवक लगते थे। जिस समय प्रभुपाद से उनका सम्पर्क हुआ, डॉ. मिश्र का स्वास्थ्य खराब चल रहा था। प्रभुपाद का आगमन उनके लिए मानो पूर्ण औषध सिद्ध हुआ।

राममूर्ति मिश्र : *परम पुण्यमूर्ति प्रभुपाद भक्तिवेदान्त गोस्वामीजी ने अपने प्रेम से सचमुच मुझे जीत लिया। वे सचमुच प्रेम के अवतार थे। मेरा शरीर अस्थि-पंजर मात्र रह गया था, उन्होंने अपनी पाक-विद्या और विशेषकर अपने प्रेम और भगवान् कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति से सचमुच ही मुझे जीवनदान दिया। भोजन बनाने में मैं बहुत आलसी था, पर वे उठ जाते और भोजन तैयार कर डालते।*

डॉ. मिश्र इस बात के प्रशंसक थे कि प्रभुपाद एक रसायनशास्त्री की सूक्ष्मता के साथ तरह-तरह के व्यंजन तैयार करते थे और उन्हें खाने के प्रति भी उनमें बड़ा उत्साह था।

राममूर्ति मिश्र : *वे मुझे रोटी नहीं, अपितु प्रसाद प्रदान करते थे। यही जीवन था और उन्होंने मेरा जीवन बचा लिया। उस समय मुझे विश्वास नहीं था कि मैं जीवित रहूँगा; किन्तु उनका समय से खाना खिलाना, चाहे मुझे भूख हो अथवा न हो, मुझे बहुत पसन्द आया। वे उठ जाते और कहते, "यह भगवत्प्रसाद लो," और मैं कहता, "बहुत अच्छा।"*

जोन सुवाल, जो डॉ. मिश्र की एक पुरानी शिष्या थी, श्रील प्रभुपाद और अपने गुरु को रिवरसाइड ड्राइव के उनके आवास में प्रायः साथ-साथ देखा करती।

जोन सुवाल : *मुझे स्वामीजी की स्मृति एक बच्चे जैसी है, इस अर्थ में कि वे बड़े*

भोले-भाले, सरल और निरीह लगते थे। डॉ. मिश्र के माध्यम से मेरी जो धारणा है, उसके अनुसार वे प्रभुपाद को अपने पिता-तुल्य समझते थे, जो उनके प्रति बहुत दयालु और कृपालु थे। किन्तु स्वामीजी को निर्दिष्ट करने के लिए जो शब्द अधिकांशतः प्रयुक्त होते थे, वे थे "एक बच्चे की तरह"—जिसका भाव यह था कि वे पुरातन सुन्दर अर्थ में सरल थे। जब पहली बार स्वामीजी से मेरा परिचय कराया गया उस समय डॉ. मिश्र ने कहा था कि वे बहुत पुण्यशाली पुरुष हैं, बहुत धार्मिक और भगवद्भावनामृत में निमग्न हैं।

स्वामीजी स्वभाव से बहुत मधुर थे; स्वयं मुझे स्मरण है कि न्यूयार्क के जीवन की नित्यप्रति की उलझनों में फँसे रहने पर भी वे बहुत अच्छे व्यक्ति थे। स्वामीजी अपना कार्य आरम्भ करने के लिए सर्वोत्तम स्थान की तलाश में थे; वे व्यवहार-पटु व्यक्ति थे। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि हर रात को अपने कपड़े धोने के बारे में वे बहुत सावधान थे। मैं उनके पास जाती और पाती कि डॉ. मिश्र के आवास में कुछ विद्यार्थी बैठे हैं और स्नान-घर में स्वामीजी के गेरुए वस्त्र टंगे हुए हैं।

कभी कभी श्रील प्रभुपाद डॉ. मिश्र से अपने अमेरिका आने के उद्देश्य के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करते और पश्चिम में कृष्णभावनामृत की स्थापना करने के विषय में अपने आध्यात्मिक गुरु की कल्पना की चर्चा करते। वे डॉ. मिश्र से सहायता के लिए अनुरोध करते, किन्तु डॉ. मिश्र सदैव अपने शिक्षण-कार्य की बातें करते, जिसके कारण उन्हें बहुत व्यस्त रहना पड़ता था। वे यह भी कहते कि उनकी योजना यथाशीघ्र अमेरिका छोड़ देने की थी। कुछ सप्ताह बाद, जब प्रभुपाद को अपने आवास में रखना डॉ. मिश्र के लिए असुविधाजनक लगने लगा, तब उन्होंने स्वामीजी को सेंट्रल पार्क के निकट १०० वेस्ट सेवंटी-सेकंड स्ट्रीट की पाँचवी मंजिल पर अपने हठ-योग स्टूडियो में स्थानान्तरित कर दिया। वह विस्तृत स्टूडियो, इमारत के मध्य में स्थित था; उसमें एक कार्यालय था और उससे लगा हुआ एक निजी कक्ष था, जिसमें स्वामीजी ठहरे। उसमें कोई खिड़की न थी।

दार्शनिक दृष्टि से प्रभुपाद से सर्वथा भिन्न मत रखने वाले डॉ. मिश्र ब्रह्म अथवा परम सत्य के निर्गुण पहलू को सर्वोपरि मानते थे। प्रभुपाद वैदिक आस्तिक दर्शन का अनुसरण करते हुए कि परम सत्य का पूर्ण ज्ञान सगुण है, सगुण रूप अथवा भगवान् की श्रेष्ठता पर बल देते थे। भगवद्गीता का कथन है कि निर्गुण ब्रह्म सगुण भगवान् के अधीन है और वह उनसे वैसे ही उद्भूत होता है, जैसे सूर्य-ग्रह से सूर्य की किरणें। इसी निष्कर्ष की शिक्षा प्राचीन भारत के प्रमुख परम्परागत आचार्यों, जैसे रामानुज और मध्व ने दी है और श्रील प्रभुपाद मध्वाचार्य की गुरु-शिष्य परम्परा में थे। दूसरी ओर डॉ. मिश्र शंकर के अनुयायी थे, जिनकी शिक्षा थी कि परम सत्य की निर्गुण व्याप्ति ही सब कुछ है और भगवान् का सगुण रूप अन्ततः माया या भ्रम है। प्रभुपाद के आस्तिक दर्शन में जहाँ आत्मा को भगवान्

का शाश्वत दास स्वीकार किया जाता है, वहाँ डॉ. मिश्र के विचार के अनुसार आत्मा व्यष्टिक नहीं है, प्रत्युत उनका विचार था कि क्योंकि हर व्यक्ति परब्रह्म ईश्वर से अभिन्न है, इसलिए अपने से बाहर ईश्वर की आराधना करने की आवश्यकता नहीं है। डॉ. मिश्र का कहना था, "हर वस्तु एक है।"

प्रभुपाद ने प्रतिवाद करते हुए कहा : यदि हममें से हर व्यक्ति परब्रह्म है, तो यह 'परब्रह्म' इस भौतिक जगत में कष्ट क्यों पा रहा है और संघर्ष क्यों कर रहा है। डॉ. मिश्र प्रत्युत्तर में कहते कि परब्रह्म अस्थायी रूप से माया से आच्छन्न है और हठयोग तथा ध्यान से मनुष्य प्रबुद्ध हो जाता है और उसे यह बोध हो जाता है कि, "यह सब ब्रह्म है।" प्रभुपाद पुनः चुनौती देते : यदि ब्रह्म माया से आच्छन्न हो सकता है, तो मानना पड़ेगा कि माया ईश्वर से, परब्रह्म से महान् है।

प्रभुपाद डॉ. मिश्र को "मायावादी" मानते थे, क्योंकि डॉ. मिश्र अनजाने ही माया को परम सत्य से महान् स्वीकार करते थे। श्रील प्रभुपाद के लिए निर्विशेष दर्शन न केवल अरुचिकर था, वरन् इसे वे भगवान् का अपमान मानते थे। भगवद्गीता (७.२४,९.११) में भगवान् कृष्ण कहते हैं, "मूढ़ लोग, जो मुझे नहीं जानते, सोचते हैं कि मैंने यह रूप और शरीर धारण किया है। अपनी अल्पज्ञता के कारण वे मेरी उस परा प्रकृति को नहीं जानते, जो अपरिवर्तनीय और सर्वोच्च है।... मूर्ख मेरा उपहास करते हैं, जब मैं मनुष्य-रूप में अवतार लेता हूँ। वे मेरी दिव्य प्रकृति को और समस्त सृष्टि पर मेरे परम प्रभुत्व को नहीं जानते।" भगवान् चैतन्य ने भी जोरदार शब्दों में मायावादी दर्शन का खंडन किया था : परब्रह्म से सम्बन्धित हर वस्तु आध्यात्मिक है, इसमें उसका शरीर, ऐश्वर्य, साजसामान आदि सम्मिलित हैं। किन्तु मायावादी दर्शन उसके आध्यात्मिक ऐश्वर्य को आच्छादित कर देता है और निर्विशेष-वाद का प्रतिपादन करता है।"

अमेरिका आने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने *भागवतम्* के तात्पर्य में लिखा था, "महत्त्वाकांक्षी मायावादी दार्शनिक परमेश्वर की सत्ता में लीन हो जाना चाहते हैं। मुक्ति के इस रूप का अर्थ मनुष्य कि व्यक्तिगत अस्तित्व का निषेध है। दूसरे शब्दों में, यह एक प्रकार की आध्यात्मिक आत्महत्या है। यह भक्तियोग के दर्शन के नितान्त प्रतिकूल है। भक्तियोग व्यष्टि बद्धजीव को अमरता प्रदान करता है। यदि कोई मायावादी दर्शन का अनुगमन करता है, तो वह अपना भौतिक शरीर त्याग करने के बाद अमरता प्राप्त करने का अवसर खो देता है।" चैतन्य महाप्रभु के शब्दों में *मायावादी कृष्ण-अपराधी :* "मायावादी शून्यवादी भगवान् कृष्ण के प्रति सर्वाधिक अपराधी है।" इस प्रकार चैतन्य महाप्रभु का यह निष्कर्ष था कि शंकर का भाष्य सुनने मात्र से मनुष्य का सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन नष्ट हो जाता है। डॉ. मिश्र शंकर के दर्शन के साथ अपने तादात्म्य से सन्तुष्ट थे और प्रभुपाद

को उनके भगवान् कृष्ण और भगवद्गीता पर रहने देना चाहते थे। किन्तु प्रभुपाद ने स्पष्ट किया कि शंकर भी मानते थे कि परब्रह्म, कृष्ण या नारायण भौतिक जगत के परे नित्य विद्यमान हैं। इसलिए वे दिव्य पुरुष हैं—*नारायणः परो व्यक्तात्।*

कुछ समय के लिए भिक्षु प्रभुपाद अपने मायावादी परिचित डॉ. मिश्र की सदिच्छा पर आश्रित थे, जिनके साथ वे नित्य भोजन करते थे, वार्तालाप करते थे और जिनके आश्रय में वे रहते थे। परन्तु यह सब कुछ कितना असुविधाजनक था। वे अमेरिका इसलिए आये थे कि वे कृष्ण के सम्बन्ध में विशुद्ध साहसपूर्ण प्रचार करेंगे, किन्तु यहाँ तो उन्हें बन्धनों में डाला जा रहा था। बटलर में उन पर उनके मेजबान की मध्यवर्गीय चेतनाओं का बन्धन था; यहाँ उन्हें दूसरे ढंग से चुप किया जा रहा था। उनके साथ व्यवहार सौहार्दपूर्ण था, किन्तु उन्हें आशंका की दृष्टि से देखा जा रहा था। डॉ. मिश्र अपने विद्यार्थियों को यह अनुमति नहीं दे सकते थे कि वे प्रभुपाद से परब्रह्म के रूप में एकमात्र भगवान् कृष्ण की प्रशंसा सुनें।

अपना अधिकांश समय अपने नये कक्ष में व्यतीत करते हुए, श्रील प्रभुपाद अपने टंकण और अनुवाद-कार्य में लगे रहते थे। किन्तु जब डॉ. मिश्र अपनी योग-कक्षाएँ लेते थे, तब कभी-कभी प्रभुपाद बाहर आते और कीर्तन कराते या भाषण देते।

रावर्ट नेल्सन (न्यूयार्क में प्रभुपाद के प्रति प्रथम सहानुभूति दिखाने वाले युवकों में से एक) : *मैं डॉ. मिश्र की उपासना-सभा में गया और डॉ. मिश्र उपदेश देने लगे। स्वामीजी एक बेंच पर बैठे थे। तब डॉ. मिश्र ने एकाएक बोलना बन्द कर दिया और उन्मुक्त मुसकान के साथ वे बोले, "अब स्वामीजी एक भजन सुनाएँगे।" मेरे विचार से डॉ. मिश्र स्वामीजी को बोलने नहीं देना चाहते थे। किसी ने मुझे बताया कि डॉ. मिश्र नहीं चाहते थे कि स्वामीजी प्रवचन दें।*

हर दिन सूर्योदय के कई घंटे पूर्व प्रभुपाद जाग उठते, स्नान करते, माला फेरते हुए हरे कृष्ण कीर्तन करते और अनुवाद-कार्य करते। उधर उनके बन्द, गवाक्षहीन कक्ष के बाहर प्रभात हो जाता और नगर जाग उठता। उनके पास स्टोव नहीं था; इसलिए सात ब्लाको को पार कर उन्हें रिवरसाइड ड्राइव वाले घर में भोजन बनाने के लिए जाना पड़ता था। सवेरे काफी देर हो जाती, जब वे भीड़ वाली सड़क पर बाहर निकलते। वे कोलम्बस एवन्यू पर पदयात्रियों की लगातार भीड़ में से होते हुए उत्तर की ओर बढ़ते और नदी से आने वाले समीर के झोंके में हर चौराहे पर रुकते जाते। बटलर के छोटे नगर के दृश्यों के स्थान पर कोलम्बस एवन्यू पर उन्हें तीस-मंजिले कार्यालय-भवनों की पंक्तियों के बीच से गुजरना पड़ता। सड़क पर उन्हें मोचियों, मिठाइयों, धोबियों और भोजन एवं अल्पाहार की दुकानें मिलतीं। ऊपर की मंजिलों में डॉक्टरों, दन्त-चिकित्सकों और वकीलों के कार्यालय थे।

सेवेंटी-फिफ्थ स्ट्रीट पहुँचकर वे पश्चिम की ओर मुड़ते और भूरे पत्थरों से बने आवासों से होते हुए ऐमस्टर्डम स्ट्रीट के पार मध्यद्वीप-पार्क वाले ब्राडवे पर चलते। यहाँ की हरियाली को 'कालिमा' कहना अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि वह कालिख और नगर की गन्दगी से आच्छादित थी। ब्राडवे में वहाँ पैदा होने वाली वस्तुओं और कसाइयों की दुकानें थीं, जो सड़क की पटरियों तक फैली हुई थीं। इस तरह घिरे हुए पार्क की पतली पट्टियों पर उत्तर-दक्षिण को चलने वाले यातायात के बीच वृद्धगण बैठे रहते थे। रिवरसाइड ड्राइव से पहले, सेवेंटी फिफ्थ स्ट्रीट के अन्तिम ब्लाक पर, ऊँचे-ऊँचे आवास थे, जहाँ द्वारपाल खड़े रहते थे। थर्टी-थ्री रिवरसाइड ड्राइव पर भी एक द्वारपाल खड़ा रहता था।

कभी-कभी प्रभुपाद रिवरसाइड पार्क में चले जाते थे। अपने हृदय-रोग का उन्हें अब भी बहुत ध्यान था, इसलिए वे लम्बी समतल भूमि पर घूमना पसन्द करते थे। कभी-कभी वे डॉ. मिश्र के स्टूडियो से सेवेंटी-सेकंड स्ट्रीट होते हुए एम्सटर्डम एवन्यू तक टहलते हुए चले जाते, फिर वहाँ से आगे बढ़कर वेस्ट एंड सुपरेट पहुँचते, जहाँ वे अपना खाना पकाने की वस्तुएँ और मसाले खरीदते। कभी वे मैनहट्टन में बिना किसी निश्चित दिशा के इधर-उधर टहलते और कभी वे नगर के विभिन्न क्षेत्रों के लिए बस पकड़ लेते।

सप्ताहांत में प्रभुपाद डॉ. मिश्र के साथ न्यूयार्क में मनरो-स्थित उनके आनन्द आश्रम को जाते, जो नगर के उत्तर में एक घंटे की यात्रा की दूरी पर था। जोन सुवाल, जो अपनी कार में उनको ले जाती थी, पिछली सीट पर बैठे हुए उन लोगों के बीच चलने वाली गरमागरम बहस को सुनती रहती। यद्यपि वे हिन्दी में बोलते थे, फिर भी वह समझ लेती कि उनका वाद-विवाद किस तरह जोर-जोर के तर्क-वितर्कों में बदल जाता था। बाद में वे फिर मित्र बन जाते थे।

आनन्द आश्रम में प्रभुपाद प्रायः कीतर्न करते; डॉ. मिश्र के शिष्य कीर्तन में और नृत्य में भी सम्मिलित होते। डॉ. मिश्र को प्रभुपाद का कीर्तन विशेष प्रिय था।

राममूर्ति मिश्र : *मुझे कोई ऐसा भक्त कभी नहीं दिखाई दिया या मिला, जो इतना अधिक कीर्तन करता हो। और उनका कीर्तन सचमुच अमृत-तुल्य था। यदि आप ध्यान दें और तनाव-मुक्त होकर सुनें, तो उनका स्वर आपके हृदय में विद्युत् की तरह स्पन्दन उत्पन्न कर देनेवाला था। आप उससे बच नहीं सकते। विद्यार्थियों में से निन्यानवे प्रतिशत ऐसे थे, जो पसन्द करते हों अथवा न करते हों, उठकर खड़े हो जाते थे और नृत्य और कीर्तन करने लगते थे। और ऐसे महात्मा के दर्शन प्राप्त कर के मैं अपने आपको भाग्यवान् अनुभव करता था।*

हार्वे कोहेन (आनन्द आश्रम का एक अभ्यागत) : *हर व्यक्ति सवेरे ही उठ जाता और प्रातःकालीन ध्यान में लग जाता। डॉ. मिश्र भारतीय ढंग की एक सुनहरी जैकट पहने होते;*

और जब मैं कमरे में पहुँचता, तो उनके विद्यार्थी ध्यान में गहरे लीन होते। सभी गद्दियां ले ली गई थीं, इसलिए मैं कमरे में पीछे की ओर, ध्यान में सुविधा के लिए दीवार टेककर बैठ जाता। मैं देखता कि एक ओर गेरुआ वस्त्र पहने और पीत-वर्ण का ऊनी कम्बल ओढे एक वृद्ध भारतीय सज्जन बैठे थे। वे कुछ गुनगुना-से रहे थे और बाद में मुझे मालूम हुआ कि वे प्रार्थना कर रहे थे। वे स्वामी भक्तिवेदान्त थे। उनका ललाट श्वेत वर्ण के 'वी-चिह्न' से रंजित था और नेत्र अर्धनिमीलित थे। वे बहुत सौम्य लगते थे।

हार्वे ने प्रयत्न किया, पर वह राजयोग नहीं कर सका। आनन्द आश्रम के लिए वह नया था और केवल सप्ताहांत विश्राम के लिए वहाँ आया था। प्रात:कालीन ध्यान के समय उसे लगता कि दीवार पर निर्मित वृत्त की अपेक्षा, जिस पर ध्यान केन्द्रित करना अपेक्षित था, खिड़की के बाहर झील के ऊपर फैले हरे कुहरे में उसके लिए अधिक आकर्षण था।

हार्वे : *मैं अपने कमरे में गया। वर्षा जोर पकड़ रही थी और खिड़कियों पर थपेड़े दे रही थी। शान्ति थी और कमरे में अकेला होने से मैं प्रसन्न था। थोड़ी देर मैं पढ़ता रहा। एकाएक मुझे लगा कि द्वार पर कोई खड़ा है। ऊपर दृष्टि की, तो देखा कि वे स्वामीजी थे। वे अपना गुलाबी कम्बल शाल की तरह लपेटे हुए थे। "क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?" उन्होंने पूछा। मैंने हाँ-सूचक सिर हिलाया और उन्होंने पूछा कि 'क्या मैं कोने वाली कुर्सी में बैठ सकता हूँ? "तुम क्या पढ़ रहे हो?" कहते हुए वे मुसकराए। "काफ्का की डायरियाँ" कुछ संकोच अनुभव करते हुए मैंने उत्तर दिया। "उँह" वे बोले और मैंने पुस्तक नीचे रख दी। उन्होंने पूछा कि मैं आश्रम में क्या कर रहा था और क्या मेरी रुचि योग में थी? "आप किस तरह के योग का अध्ययन कर रहे हैं?" "मैं इसके बारे में अधिक नहीं जानता," मैंने उत्तर दिया। "किन्तु मैं समझता हूँ कि मैं हठयोग का अध्ययन करना चाहूँगा।" वे इससे प्रभावित नहीं हुए। "इससे अच्छी और चीजें भी हैं," उन्होंने समझाया, "योग के अधिक ऊँचे और अधिक सीधे रूप भी हैं। भक्तियोग सबसे ऊँचा रूप है—यह भगवान् के प्रति भक्ति का विज्ञान है।"*

जब वे बोल रहे थे, मुझे जोरदार अनुभूति हुई कि वे ठीक कह रहे थे; वह सत्य कह रहे थे। एक रोमांचकारी, आवेशमय संवेग ने मुझे अभिभूत कर लिया कि वे ही मेरे गुरु थे। उनके शब्द कितने सरल थे। और सप्ताहांत-भर मैं उनकी ओर देखता रहा। प्रेम की ऊष्मा से भरे वे शान्त और महिमामंडित लगते थे। और उन्होंने मुझसे शहर लौटने के बाद मिलने को कहा।

डॉ. मिश्र भगवद्गीता की, शंकर के अनुसार, निराकार-निर्गुण सिद्धान्त वाली व्याख्या करते हुए भाषण देते और जब प्रभुपाद को बोलने की अनुमति मिलती, तो वे उसका खंडन करते। एक बार प्रभुपाद ने डॉ. मिश्र से अनुरोध किया कि चैतन्य महाप्रभु के आन्दोलन

को बढ़ाने में वे उनकी सहायता करें, किन्तु डॉ. मिश्र ने यह कहकर प्रभुपाद की बात टाल दी कि वे प्रभुपाद को चैतन्य महाप्रभु का अवतार मानते थे और इसलिए उन्हें किसी सहायता की आवश्यकता नहीं थी। प्रभुपाद ने उत्तर दिया कि चैतन्य महाप्रभु के पिता का नाम भी "मिश्र" था, इसलिए डॉ. मिश्र को उनके आन्दोलन को फैलाने में सहायता करनी चाहिए। श्रील प्रभुपाद ने उन्हें *श्रीमद्भागवतम्* के अनुवाद में संस्कृत भाषा को जाँचने का काम सौंपना चाहा, किन्तु डॉ. मिश्र ने इनकार कर दिया—यह एक ऐसा निर्णय था, जिसके लिए बाद में उन्हें पश्चाताप हुआ।

हुर्ता लुर्च (आनन्द आश्रम का एक विद्यार्थी) : *उनसे मेरा सीधा सामना भोजनालय में हुआ। वे इस बात में बहुत सतर्क और दृढ़-निश्चय थे कि वे केवल वही भोजन करेंगे, जिसे उन्होंने स्वयं तैयार किया हो। वे आते और कहते, "एक बर्तन लाओ।" जब मैं एक बर्तन ला देता, तो वे कहते, "नहीं, इससे बड़ा।" जब मैं बड़ा बर्तन लाता तो वे कहते, "नहीं, इससे छोटा।" तब वे कहते, "आलू लाओ" तब मैं आलू लाता। वे भोजन बहुत शान्तिपूर्वक पकाते। वे बहुत बातें कभी न करते। वे आलू पकाते, तब कुछ सब्जियाँ बनाते, फिर कुछ चपातियाँ। खाना बनाने के बाद वे बाहर बैठकर खाते। वे प्रायः इतना खाना बनाते जो डॉ. मिश्र और पाँच-छह और लोगों के लिए पर्याप्त होता। हर दिन जब वे वहाँ होते, वे इतना ही अधिक पकाते। मैंने उनसे चपातियाँ बनाना सीखा। वे प्रायः सप्ताहांत में ही वहाँ रहते और फिर नगर को लौट जाते। मैं समझता हूँ कि वे अनुभव करते थे कि नगर ही ऐसा स्थान था, जहाँ उन्हें अपना मुख्य कार्य करना था।*

• • •

यह निश्चय ही सच था। किन्तु धन या सहायता के बिना वे वहाँ क्या कर सकते थे? वे केवल कुछ सप्ताह रुकने और फिर भारत वापस जाने की सोच रहे थे। इस बीच वे मैनहट्टन में घूमते-विचरते और पत्र लिखते हुए *श्रीमद्भागवतम्* की पांडुलिपियों पर कार्य कर रहे थे। वे एक नयी संस्कृति का अध्ययन कर रहे थे, व्यावहारिक दृष्टि से इस बात का अनुमान लगाते हुए और आशापूर्ण ढंग से कल्पना करते हुए कि पश्चिमी जगत में कृष्ण-चेतना का प्रवेश कैसे कराया जाये। सुमति मोरारजी को उन्होंने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये :

• • •

अक्तूबर २७,

जहाँ तक मैंने समझा है, अमेरिका के लोग आध्यात्मिक अनुभूति की भारतीय

> शैली के बारे में जानने को बहुत उत्सुक हैं और अमेरिका में तथाकथित योगाश्रम बहुत से हैं। दुर्भाग्यवश सरकार द्वारा वे बहुत सम्मानित नहीं हैं और ऐसी जानकारी मिली है कि इन योगाश्रमों द्वारा भोली-भाली जनता का खूब शोषण हुआ है, जैसाकि भारत में भी हुआ है। आशा की बात केवल यह है कि अमेरिका के लोगों की रुचि आध्यात्मिकता की ओर है और उनका बहुत अधिक हित हो सकता है, यदि *श्रीमद्भागवत* के मत का यहाँ प्रचार किया जाये...

श्रील प्रभुपाद ने लक्षित किया कि अमेरिका के लोग भारतीय कला और संगीत का भी अच्छा स्वागत कर रहे थे। "केवल स्वागत का ढंग देखने के लिए" वे एक मद्रासी नृत्यांगना, बाला सरस्वती के नृत्य-प्रदर्शन में सम्मिलित हुए।

> मैं एक मित्र के साथ नृत्य देखने गया, यद्यपि गत चालीस वर्षों से मैं किसी ऐसे नृत्य-समारोह में कभी सम्मिलित नहीं हुआ था। नृत्यांगना अपने प्रदर्शन में बहुत सफल रही। संगीत भारतीय शास्त्रीय लय में, अधिकतर संस्कृत में था और अमरिकी जनता उसे सराह रही थी। इसलिए अपने भावी प्रचार-कार्य के लिए अनुकूल परिस्थितियां देखकर मैं प्रोत्साहित हुआ।

उन्होंने कहा कि भागवतम् का प्रचार भी संगीत और नृत्य के द्वारा किया जा सकता था, किन्तु इनको प्रस्तुत करने के लिए उनके पास साधन नहीं थे। ईसाई मिशन विपुल साधनों का सहारा लेकर संसार-भर में प्रचार-कार्य कर रहे थे, तो कृष्ण के भक्त सारे संसार में भागवतम् का प्रचार करने के लिए एकजुट क्यों नहीं हो सकते? उन्होंने यह भी लक्षित किया कि ईसाई मिशन साम्यवाद का विस्तार रोकने में प्रभावी नहीं हो सके, जबकि भागवतम् आन्दोलन, अपनी दार्शनिक, वैज्ञानिक पहुँच के कारण प्रभावी सिद्ध हो सकता था। वे जान-बूझकर भक्ति प्रवण, सम्पन्न सुमति मोरारजी के मन में प्रेरणा का बीज बो रहे थे।

नवम्बर ८

प्रभुपाद ने अपने गुरु-भाई तीर्थ महाराज को, जो गौड़ीय मठ के अध्यक्ष बन चुके थे, यह स्मरण कराने के लिए पत्र लिखा कि उनके गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती की प्रबल इच्छा थी कि पाश्चात्य देशों में प्रचार-केन्द्र खोले जाये। श्रील भक्तिसिद्धान्त ने इंगलैंड और अन्य योरोपीय देशों में संन्यासी भेजकर कई बार इसके लिए प्रयास भी किये थे, किन्तु प्रभुपाद ने लिखा कि, "इसके कोई ठोस परिणाम नहीं निकले।"

> मैं इस देश में उसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर आया हूँ और जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, यहाँ अमेरिका में चैतन्य महाप्रभु के मत के प्रचार के लिए बहुत अच्छा क्षेत्र है।...

प्रभुपाद ने संकेत किया कि अमेरिका में कुछ मायावादी संगठन थे, जिनके पास इमारते थीं, किन्तु वे अधिक संख्या में अनुयायी आकृष्ट नहीं कर पा रहे थे। परन्तु उन्होंने रामकृष्ण मिशन के स्वामी निखिलानंद से बात की थी, जिनका मत था कि अमेरिकावासी भक्तियोग के उपयुक्त थे।

> मैं यहाँ हूँ और कार्य के लिए अच्छा क्षेत्र देख रहा हूँ। किन्तु मैं अकेला हूँ, बिना धन और सहायकों के। यहाँ अपना केन्द्र खोलने के लिए हमारे पास अपनी इमारतें होना जरूरी है।...

यदि गौड़ीय मठ के नेता न्यूयार्क में अपनी शाखा खोलने का विचार करें, तो श्रील प्रभुपाद उसकी व्यवस्था करने को तैयार थे। उन्होंने लिखा कि अपनी इमारत के बिना नगर में अपने सन्देश का प्रचार नहीं हो पाएगा। श्रील प्रभुपाद ने आगे लिखा कि यदि उनके गुरु–भाई आपस में सहयोग करें, तो देश–भर में बहुत से नगरों में वे कई केन्द्र स्थापित कर सकते थे। उन्होंने बार–बार इस बात पर बल दिया कि यद्यपि अन्य समुदायों के पास भारत का वास्तविक आध्यात्मिक दर्शन नहीं था, फिर भी वे इमारत पर इमारत खरीदते जा रहे थे। पर गौड़ीय मठ के पास कुछ भी नहीं था।

यदि आप मेरे साथ सहयोग करने को सहमत हों, जैसाकि मैंने ऊपर सुझाव दिया है, तो मैं यहाँ रहने की अपनी अवधि बढ़वा लूँगा। अभी यह अवधि इस नवम्बर के अन्त तक है। पर यदि मुझे आपकी सहमति तत्काल प्राप्त हो जाती है, तो मैं अपनी अवधि बढ़वा लूँगा। अन्यथा, मैं भारत लौट जाऊँगा।

• • •

नवम्बर ९
(६:०० अपराह्न)

प्रभुपाद पाँचवी मंजिल पर डॉ. मिश्र की योगशाला के अपने कमरे में अकेले बैठे थे कि बत्तियाँ सहसा बुझ गईं। न्यूयार्क नगर में १९६५ के ब्लेक आउट का यह उनका पहला अनुभव था। भारत में बिजली का सहसा चले जाना सामान्य बात थी, अतः प्रभुपाद को

वही स्थिति अमेरिका में मिलने पर आश्चर्य तो हुआ, पर वे अक्षुब्ध बने रहे। वे अपनी माला पर हरे कृष्ण मंत्र का जप करने लगे। इस बीच उनके कमरे के बाहर न्यूयार्क की सम्पूर्ण महानगरी अंधकार में डूब गयी थी। विशाल पैमाने पर बिजली की विफलता से सारी नगरी सहसा अंधकार में डूब गई थी; आठ लाख व्यक्ति भूगर्भस्थ मार्गों में फँस गये थे और अमेरिका के नौ राज्यों तथा कनाडा के तीन प्रान्तों में ३ करोड़ से अधिक लोग प्रभावित हुए थे।

दो घंटे बाद डॉ. मिश्र के आवास से एक व्यक्ति मोमबत्तियाँ और कुछ फल लेकर प्रभुपाद के कमरे में आया। उसने देखा कि प्रभुपाद प्रसन्न मुद्रा में, हरे कृष्ण जपते हुए अंधकार में बैठे हैं। उसने न्यूयार्क नगर में ऐसे ब्लेक आउट की गम्भीरता के बारे में उन्हें बताया। प्रभुपाद ने उसे धन्यवाद दिया और फिर अपने जप में लग गये। ब्लेक आउट दूसरे दिन सवेरे सात बजे तक रहा।

• • •

श्रील प्रभुपाद को उनके ८ नवम्बर के पत्र का उत्तर तीर्थ महाराज से कलकत्ता से प्राप्त हुआ। प्रभुपाद ने अपने पत्र में अपनी आशाएँ और अमेरिका में रहने के लिए अपनी योजनाओं के बारे में लिखा था। किन्तु उन्होंने इस बात पर विशेष बल दिया था कि उनके गुरु-भाइयों को उनके प्रति विश्वास प्रकट करना होगा और कुछ ठोस सहायता देनी होगी। उनके गुरु-भाई आपस में सहयोगपूर्वक कार्य नहीं कर रहे थे। प्रत्येक नेता अपना अलग भवन बनाए रखने में अधिक रुचि दिखा रहा था, बजाये इसके कि औरों के साथ मिलकर वह विश्वभर में चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों के प्रचार में रुचि प्रदर्शित करे। इसलिए नेताओं के लिए कैसे सम्भव था कि वे न्यूयार्क नगर में एक शाखा स्थापित करने की श्रील भक्तिवेदान्त की कल्पना में सहभागी बन सकें? उन्हें तो यह प्रभुपाद का अकेला प्रयास लगता था। इन कठिनाइयों की सम्भावना होने पर भी प्रभुपाद ने उनके प्रचार मनोवृत्ति के उत्साह को जगाने का प्रयत्न किया और उन्हें उनके आध्यात्मिक गुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर की इच्छाओं का स्मरण कराया। उनके गुरु महाराज पश्चिम में कृष्ण-चेतना का प्रसार चाहते थे। किन्तु अन्त में जब प्रभुपाद को तीर्थ महाराज का उत्तर प्राप्त हुआ, तो उन्होंने देखा कि वह अनुकूल नहीं था। उनके गुरुभाई तीर्थ महाराज ने न्यूयार्क में कुछ करने के प्रयास के विरुद्ध तर्क नहीं दिया था, किन्तु उन्होंने विनम्रतापूर्वक लिखा था कि गौड़ीय मठ के धन का उपयोग ऐसे कार्य में नहीं किया जा सकता।

प्रभुपाद ने उत्तर दिया, "यह बहुत उत्साहजनक नहीं है, किन्तु मैं निराश होने वाला व्यक्ति नहीं हूँ।" वास्तव में, उन्हें तीर्थ महाराज के उत्तर में कुछ आशा दिखाई दी, इसलिए

उन्होंने अपने गुरु-भाई को १४३, वेस्ट सेवेंटी-सेकंड स्ट्रीट में स्थित उस इमारत का विवरण लिख भेजा, जो बिकने वाली थी और जिसे उन्होंने हाल ही में देखा था। इमारत केवल साढ़े अठारह फुट चौड़ी और एक सौ फुट लम्बी थी। उसकी पहली मंजिल पर एक भंडार था, उसके नीचे तहखाना था और एक मध्य तल था। प्रभुपाद ने तीर्थ महाराज को उसकी कीमत एक लाख डालर बताई, जिसमें बीस हजार डालर तुरन्त देना था। उन्होंने यह भी लिखा कि इस इमारत का क्षेत्रफल उनके कलकत्ता के शोध संस्थान से दुगना था। प्रभुपाद का विचार था कि इमारत के तहखाने को रसोई-घर और भोजन-कक्ष बनाया जायेगा, पहली मंजिल व्याख्यान-कक्ष होगा, मध्य तल आवास के लिए होगा, जिसमें कुछ जगह भगवान् कृष्ण के अर्चाविग्रह के लिए अलग रखी जायेगी।

उपयुक्त ही था कि प्रभुपाद ने अपना वर्णन एक ऐसे व्यक्ति के रूप में किया था, 'जो निराश नहीं होता।' उन्हें इस बात का विश्वास था कि यदि एक केन्द्र स्थापित हो जाये, जहाँ लोग एक विशुद्ध भक्त का प्रवचन सुनने को आ सकें, तो अमेरिका में भारत की सच्ची भगवद्भावनाभावित संस्कृति का शुभारम्भ हो सकता है। फिर भी, चूँकि उन्होंने अपनी योजनाओं को मैनहट्टन में एक महंगी इमारत की प्राप्ति पर निर्भर कर रखा था, इसलिए उनका लक्ष्य अप्राप्य लगता था। फिर भी वे भारत में प्रमुख भक्तों को निरन्तर लिख रहे थे, यद्यपि इन भक्तों को उनकी योजनाओं में कोई रुचि नहीं थी।

"उन लोगों को मेरी सहायता क्यों नहीं करनी चाहिए?" उन्होंने सोचा। आखिर वे कृष्ण के भक्त हैं। क्या भक्तों को आगे आकर अमेरिका में प्रथम कृष्ण-मन्दिर की स्थापना नहीं करनी चाहिए? निश्चय ही, प्रभुपाद इस योग्य थे और इसके लिए अधिकृत थे कि कृष्ण के सन्देश का प्रसार करें। जहाँ स्थान का प्रश्न था, न्यूयार्क कदाचित् संसार में सबसे अधिक सर्वदेशीय नगर था। उन्हें एक इमारत मिल गई थी, जो बहुत महंगी नहीं थी और अच्छे स्थान में थी; और वहाँ एक कृष्ण-मन्दिर की बड़ी आवश्यकता थी जिससे भारतीय मायावादियों के प्रचार का निराकरण किया जा सके। जिन कृष्ण-भक्तों को प्रभुपाद लिख रहे थे, वे जानते थे कि भगवान् कृष्ण केवल एक हिन्दू देवता नहीं हैं, प्रत्युत परम ब्रह्म हैं, जो सारे संसार के उपास्य हैं। इसलिए कृष्ण-भक्तों को न्यूयार्क में कृष्ण को पूजे जाते देखकर प्रसन्न होना चाहिए। कृष्ण ने स्वयं भगवद्गीता में कहा था, "सब धर्मों को त्यागकर मेरी शरण में आओ।" इसलिए यदि वे कृष्ण के भक्त हैं, तो उन्हें सहायता क्यों नहीं करनी चाहिए? वह कैसा भक्त है, जो भगवान् की महिमा का संवर्धन नहीं चाहता?

किन्तु श्रील प्रभुपाद ने प्रारम्भ में ही इस बात का निर्णय नहीं लिया था कि कृष्ण के सन्देश के प्रचार में कौन सहायक होगा और कौन नहीं होगा। वे कृष्ण के प्रति पूर्णतया समर्पित थे और उन पर ही पूर्णतया आश्रित थे और अपने आध्यात्मिक गुरु के

आदेशानुसार वे विना किसी भेद-भाव के हर एक के पास सहायता के लिए जाते थे।

एक सुमति मोरारजी थीं। जिन्होंने *भागवतम्* के प्रकाशन में उनकी सहायता की थी और उन्हें अमेरिका भिजवाया था। हाल ही में उनको लिखे गये एक पत्र में प्रभुपाद ने संकेत-मात्र दिया था :

> मैं आपको केवल एक विचार दे रहा हूँ और यदि आप गम्भीरतापूर्वक इस मामले पर मनन करेंगी और अपने प्रिय भगवान् बालकृष्ण से परामर्श करेंगी, तो निश्चय ही इस विषय में आपको और अधिक प्रकाश मिलेगा। इस बात के लिए गुंजायश है और निश्चय ही इस बात की आवश्यकता भी है कि हर भारतीय, विशेषकर कृष्ण के भक्त, इस मामले को हाथ में लें।

किन्तु उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला था। बटलर छोड़ने के बाद से उन्हें सुमति मोरारजी से कोई समाचार नहीं मिला था, यद्यपि उनके कहे शब्द प्रभुपाद के लिए भविष्यवाणी सिद्ध हुए थे। और वे उनके मन में बैठ गये थे : "मुझे लगता है कि आपको वहाँ तब तक रुकना चाहिए, जब तक कि आप बीमारी से अच्छे न हो जायें और आपको अपना मिशन पूरा करने के बाद ही वापस आना चाहिए।"

अब सुमति मोरारजी को कुछ महान् कार्य करना चाहिए। उन्होंने उन्हें स्पष्ट शब्दों में लिखा :

> इसलिए मेरा विचार है कि इस उद्देश्य से न्यूयार्क में बालकृष्ण का एक मन्दिर तुरन्त स्थापित करना चाहिए। और भगवान् बाल कृष्ण की एक भक्त होने के नाते आपको यह महान् और श्रेष्ठ कार्य सम्पन्न करना चाहिए। अब तक न्यूयार्क में हिन्दुओं का कोई उपासना-योग्य मन्दिर नहीं है, यद्यपि भारत में अमरीकी मिशनरियों के कितने ही चर्च और संस्थान है। इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करूँगा कि आप यह श्रेष्ठ कार्य करें और संसार के इतिहास में इसका उल्लेख होगा कि अमेरिका में पहला हिन्दू मन्दिर एक पवित्र हिन्दू महिला, श्रीमती सुमति मोरारजी ने स्थापित किया, जो न केवल भारत की एक महान् समृद्ध व्यवसायी व्यक्ति हैं, वरन् एक धर्मनिष्ठ और भगवान् कृष्ण की परम भक्त हिन्दू महिला भी हैं। यह कार्य आपके लिए है और साथ गौरवपूर्ण भी है. . .

उन्होंने सुमति मोरारजी को विश्वास दिलाया कि उनकी अभिलाषा अमेरिका में किसी

भवन या मन्दिर का स्वामी बनने की नहीं थी। किन्तु प्रचार के लिए एक भवन का होना अत्यावश्यक था :

> भगवान् के सच्चे भक्तों का एक संगठन होना चाहिए; उन्हें एक साथ बैठकर भगवान् की महिमा का गान करते हुए कीर्तन करना चाहिए; उन्हें श्रीमद्भागवतम् के उपदेशों को सुनना चाहिए; भगवान् के स्थान या मन्दिर से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए और उन्हें पर्याप्त अवसर मिलना चाहिए कि वे मन्दिर में भगवान् की पूजा कर सकें। किसी प्रामाणिक भक्त के निर्देशन में उन्हें ये सुविधाएँ दी जा सकती है। और *श्रीमद्भागवतम्* का मार्ग हर एक के लिए खुला है...

प्रभुपाद ने सुमति मोरारजी को सूचित किया कि उन्होंने एक इमारत देख रखी थी, जो "इस महान् प्रचार-कार्य के लिए बिल्कुल उपयुक्त थी।" यह एक आदर्श इमारत थी, "मानो यह केवल इसी उद्देश्य के लिए निर्मित की गई थी।"

> ...और इस कार्य को करने की आप की स्वीकृति मात्र से हर चीज सुचारु रूप से सम्पन्न हो जायगी।
>
> इमारत लगभग तीन-मंजिली है। भूमितल, तहखाना और दो ऊपरी मंजिलें। साथ ही गैस, गरमी आदि सभी के लिए उपयुक्त व्यवस्थाएँ है। भूमितल का उपयोग बालकृष्ण के प्रसाद तैयार करने के लिए किया जा सकता है, क्योंकि प्रचार का यह केन्द्र केवल शुष्क तर्क-वितर्क के लिए न होकर वास्तविक लाभ के लिए होगा, अर्थात् सुस्वादु प्रसाद के लिए। मैं परीक्षा करके देख चुका हूँ कि यहाँ के लोग मेरे द्वारा तैयार किये गये शाकाहारी प्रसाद किस तरह पसन्द करते है। वे मांस खाना भूल जायँगे और शाकाहारी प्रसाद का व्यय वहन करने लगेंगे। अमेरिका के लोग भारतीयों की तरह गरीब नहीं हैं और यदि उन्हें कोई चीज पसन्द आ जाती है, तो अपनी मनपसन्द चीज पर वे कुछ भी व्यय कर सकते हैं। इस समय उनका शोषण केवल शब्दों के मायाजाल और शारीरिक जिमनास्टिक्स से हो रहा है और इन पर भी वे धन खर्च कर रहे हैं। किन्तु जब उन्हें वास्तविक वस्तु की प्राप्ति होगी और बालकृष्ण का अति सुस्वादु प्रसाद ग्रहण करके उन्हें आनन्द की अनुभूति होगी, तो मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि अमेरिका में एक अनुपम वस्तु का प्रवेश होगा।

अब प्रभुपाद की योजना के अनुसार अमेरिका में उनके लिए केवल एक सप्ताह शेष रह गया था।

> अमेरिका में मेरे रहने की अवधि १७ नवम्बर १९६५ को पूरी हो जायगी। किन्तु मैं आप की भविष्यवाणी में विश्वास कर रहा हूँ, "आपको वहाँ तब तक रहना चाहिए जब तक अपनी बीमारी से अच्छी तरह मुक्त न हो जाँय और अपना मिशन पूरा करके ही आपको वापस आना चाहिए।"

• • •

टैगोर सोसायटी आफ न्यूयार्क इन्क.
"भगवत्-चेतना"
पर एक प्रवचन के लिए
आपको हार्दिक आमंत्रण देते हैं
वक्ता : ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी
तिथि : रविवार, नवम्बर २८, १९६५
समय : व्याख्यान, ३:३० अपराह्न
चाय, ४:३० अपराह्न
स्थान : न्यू इंडिया हाउस, ३ ईस्ट ६४वीं स्ट्रीट
व्याख्याता भारत के एक सम्मानित विद्वान और धार्मिक गुरु,
स्वामी भक्तिवेदान्त न्यूयार्क अल्प समय के लिए आये हैं। वे
श्रीमद्भागवत् का संस्कृत से साठ-खंडों में अंग्रेजी अनुवाद
करने के चिर-स्मरणीय कार्य में लगे हुए हैं।

नवम्बर २८

दाऊद हारून श्रील प्रभुपाद से कभी नहीं मिले थे। वे नगर के मध्यवर्ती भाग में रहने वाले एक संगीतज्ञ थे और चौसठवीं स्ट्रीट में टैगोर सोसायटी की बैठकों में सम्मिलित होते रहते थे।

दाऊद हारून : *मैं शहर के ऊपरी भाग में स्थित टैगोर सोसायटी पहुँचा और दर्शक-कक्ष में चला गया। और मैंने देखा कि मंच खाली था और थोड़े से लोग दर्शक-कक्ष के पीछे के भाग में बैठे थे। मैं बीच-मार्ग से होता हुआ आगे बढ़ गया, क्योंकि मुझे सामान्यतया आगे बैठना पसन्द है। तब मैंने देखा कि एक वृद्ध सज्जन मेरी दाहिनी ओर बैठे*

हैं और उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया। इसलिए मैं उनके पास गया और उनकी बगल वाली सीट पर बैठ गया। और तब मैंने देखा कि वे अपनी माला फेर रहे थे। यद्यपि उनकी माला एक थैली में थी, पर मैं मनकों की आवाज सुन सकता था और उनके शरीर को हिलते देख सकता था। और यह मुझे बहुत अच्छा लगा, क्योंकि यह एक ऐसी चीज थी जिसका मैं अभ्यस्त था।

जब मैं वहाँ बैठा दर्शककक्ष के चारों ओर देख रहा था, तो वे मेरी ओर मुड़े और मधुर ढंग से मुसकराए। उन्होंने अपना सिर हिलाया और मैंने अपना सिर हिलाया और वे मुसकराए और अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। तब वे फिर मेरी ओर मुड़े और मुझसे कोमल स्वर में पूछा कि क्या मैं भारत से आया हूँ। मैंने कहा, "नहीं, महोदय, मैं भारत से नहीं आया हूँ। मैं यहीं का हूँ, संयुक्त राज्य का।" उन्होंने मुँह फेर लिया और अपनी माला जपते रहे। तब वे फिर मेरी ओर मुड़े और उन्होंने पूछा कि क्या मैं हिन्दू हूँ। मैंने कहा, "नहीं, महोदय, मैं हिन्दू नहीं हूँ' मैं मुसलमान हूँ।" और उन्होंने कहा, "ओह! बहुत अच्छा, बहुत अच्छा। हाँ, मैं प्रायः भारत में बच्चों को कुरान पढ़ते सुनता हूँ।" और वे फिर मुड़ गये और उनका शरीर झूमता हुआ हिल रहा था और वे माला फेरते रहे।

तब हमारे बीच रह-रहकर कई बार विनोदपूर्ण बातों का आदान-प्रदान हुआ। और तब एक महिला मंच पर आईं और उन्होंने घोषणा की कि व्याख्यान आरम्भ होने वाला है और यदि वहाँ एकत्रित लोग ताली बजाएँ, तो वे वक्ता को स्वागत के लिए मंच पर बुलाएं। ठीक उसी समय जिस सज्जन की बगल में मैं बैठा था, उन्होंने अपना हाथ मेरे कंधे पर रखा और कहा, "क्षमा करें, महोदय, क्या मेरे ऊपर एक अनुग्रह करेंगे?" और मैंने कहा, "हाँ, मैं कुछ भी कर सकता हूँ।" वे बोले, "क्या आप मेरी पुस्तकें देखते रहेंगे?" मैंने नीचे फर्श की ओर देखा, वहाँ पुस्तकों के कई बक्से पड़े थे, एक छाता था और कई अन्य वस्तुएँ थीं। मैंने कहा, हाँ, मैं इन सभी चीजों को देखता रहूँगा। और उन्होंने कहा, "क्षमा कीजिएगा।" वे बगल के मार्ग से आगे बढ़े और आश्चर्य की बात है कि वे मंच पर चढ़ गये। और ये वही सज्जन थे, जिनका व्याख्यान सुनने मैं आया था—स्वामी भक्तिवेदान्त।

वे मंच पर चढ़ गये और उन्होंने लोगों को अपना परिचय दिया और प्रयत्न किया कि लोग आगे आ जाएँ। उन्होंने कहा, "आगे आ जाइए, आगे आ जाइए।" कुछ लोग आगे आ गये। कुछ मिले-जुले दम्पति थे, बहुत-से भारतीय थे, पुरुष थे, महिलाएँ थीं, अधिकतर लोग प्रौढ़ वय के थे, कुछ कालेज के लगते थे, बहुत-से प्राध्यापक जैसे लगते थे और बहुतसी महिलाएँ वहाँ थीं।

तब उन्होंने अपना व्याख्यान आरम्भ किया। वे सीधे अपने विषय में प्रवेश कर गये। वे सृष्टिकर्ता की महानता का गुणगान उच्च स्वर में करने लगे और उन्होंने कहा कि सबसे

महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सृष्टिकर्ता को, भगवान् को, स्मरण में रखे जायें। उन्होंने भगवत् चेतना की व्याख्या विस्तार से की और बताया कि भागवत् चेतना क्या है, किस तरह भगवान् सर्वव्यापक हैं और किस तरह हम सब का कर्तव्य है कि हम भगवान् का स्मरण करें। इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि हम उन्हें क्या कहते हैं, उन्हें किस नाम से पुकारते हैं। आवश्यक यह है कि हम उनका स्मरण करें। उन्होंने एक उदाहरण दिया जो बड़ा मार्मिक था। उन्होंने हरे कृष्ण, हरे राम का कीर्तन किया और इस मंत्र की शक्ति और रक्षात्मक अनुग्रह के विषय में बताया। व्याख्यान के मध्य में वे थोड़ा रुके और उन्होंने कुछ जल पिया।

जब वे मंच से नीचे उतर रहे थे, तो अन्तिम बात उन्होंने यह कही कि उनके पास श्रीमद्भागवत की कुछ प्रतियाँ थीं। उन्होंने बताया कि वे उन पर कार्य करते रहे थे और वे तीन खंडों में थीं और उनका मूल्य १६ डालर था। तब उन्होंने अपना व्याख्यान समाप्त किया और वे नीचे आ गये।

बहुत-से लोग उनके पास पहुँच गये। कुछ संकोची और कुछ बहुत उत्साहपूर्ण थे। कुछ ने उनसे हाथ मिलाया और पुस्तकें माँगी। पहले उनकी चारों ओर लगभग पन्द्रह लोग इकट्ठे थे। वे उनसे बात कर रहे थे और प्रश्न पूछ रहे थे। अपनी चारों ओर इतने लोगों को देखकर वे मेरे पास आये और बोले, "महोदय, क्या मेरे ऊपर एक और अनुग्रह करेंगे? क्या आप पुस्तकों की बिक्री का कार्य अपने ऊपर लेंगे? लोग आपके पास पुस्तकों के लिए आयेंगे, इसलिए आप पुस्तकें बेचें और पैसे इस छोटे-से बक्से में रखते जायें। मैं थोड़ी देर में आपके पास आऊँगा।" मैंने कहा, "बहुत अच्छा।"

इस तरह जब वे लोगों से बात करने लगे, तो अन्य लोग मेरे पास आने लगे। उन लोगों ने जरूर यह सोचा होगा कि मैं उनका निजी सचिव या सहयात्री था। लोग मेरे पास आने लगे और उनके विषय में तरह-तरह के व्यक्तिगत प्रश्न पूछने लगे, जिनके उत्तर मैं सचमुच नहीं दे सकता था, क्योंकि मैं नहीं जानता था। कुछ लोग पुस्तकें खरीद रहे थे या उन्हें पन्ने फिराकर देख रहे थे। इस तरह यह चलता रहा और मैं इस प्रयास में था कि लोगों के साथ उनका जो वार्तालाप चल रहा था, उसे सुनता रहूँ और साथ ही पुस्तकों की बिक्री का कार्य भी करता रहूँ।

कुछ लोग गुरु की खोज में थे और यह जानने का प्रयत्न कर रहे थे कि स्वामी भक्तिवेदान्त कौन थे। कुछ उनसे सचमुच प्रश्नोत्तर में लगे थे। किन्तु वे केवल मुसकरा रहे थे और लोगों के प्रश्नों के उत्तर सहज ढंग से दे रहे थे। मुझे स्मरण है, उन्होंने उनसे कहा, "आप जान जायेंगे। कोई दबाव नहीं है। आप जान जायेंगे कि मैं आपका गुरु हूँ या नहीं।" उन्होंने सुझाव दिया कि लोग जायें और उनकी पुस्तकें पढ़ें।

और तब एकत्रित समुदाय की संख्या घटकर लगभग आधी दर्जन रह गई। जो थोड़े-से बचे थे, वे केवल उन्हें देख रहे थे; कुछ तो इतने संकोची थे कि उनके पास जा ही नहीं रहे थे। तब वे स्वयं उनके पास गये और उनसे वार्तालाप करके उन्हें शान्त किया। बाद में वे मेरे पास आये और हमने पैसे गिने। मैंने पुस्तकों को समेटने में और शेष पुस्तकों के बक्से नीचे लाने में उनकी सहायता की। जब हम अलग होने लगे, तब उन्होंने मुझे वहुत धन्यवाद दिया। मैंने उन्हें अपना नाम, पता और फोन का नम्बर दिया और श्रीमद्भागवत का एक सेट खरीदा। ●